पंचमहाव्रत

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,
पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

जैन संस्कृति व्रतों की संस्कृति है। श्रम, तप और त्याग प्रधान श्रमण संस्कृति में आध्यात्मिक मूल्यों की महती प्रतिष्ठा है। आध्यात्मिक जीवन के उत्कर्ष को निरन्तर गतिशील बनाये रखने के लिए व्रत, नियम आदि के पालन और मर्यादा से अपने आचार को संवारना आवश्यक है। हिंसा, सत्य, चोरी, मैथुन और परिग्रह से निवृत्त होना, इनसे विरति होना व्रत है। विरति अर्थात् जानकर और प्राप्त करके इन कार्यों को न करना। प्रतिज्ञाकर जो नियम लिया जाता है वह भी व्रत है, यह करने योग्य है और यह करने योग्य नहीं है, इस प्रकार नियम लेना भी व्रत है। इस प्रकार हिंसा आदि पांच पापों के दोषों को जानकर आत्मोत्कर्ष के उद्देश्य से इनका त्याग या इनसे विरति की प्रतिज्ञा लेकर पुनः कभी उनका सेवन न करने को व्रत कहते हैं।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, ये जब मर्यादित रूप से ग्रहण किये जाते हैं, तब अणुव्रत कहलाते हैं। अणुव्रत का अधिकारी गृहस्थ होता है। वह हिंसा आदि का सर्वथा परित्याग नहीं कर सकता। जबकि साधु–साध्वी वर्ग का जीवन गृहस्थी के उत्तरदायित्व से मुक्त होता है। वह पूर्ण आत्मबल के साथ पूर्ण चारित्र के पथ पर अग्रसर होता है। अतः इन असत्प्रवृत्तियों से एकदेश निवृत्ति को अणुव्रत तथा सर्वदेशनिवृत्ति को महाव्रत कहा जाता है। वस्तुतः व्रत अपने आप में अणु या महत् नहीं होते, यह विभाजन और ये विशेषण व्रत के पालन करने वाले की क्षमता पर निर्भर हैं। जब साधक अपने आत्मबल से सर्वदेश रूप में व्रतों के धारण और निरतिचार पालन में पूर्ण समर्थ हो जाता है, तब उसके व्रत महाव्रत एवं वह महाव्रती श्रमण कहा जाता हैं। असंयम के निमित्त से होने वाले नवीन कर्म समूह का निवारण रूप महान् प्रयोजन को साधने के कारण इन्हें महाव्रत कहा जाता है। महान् पुरुषों के द्वारा इनका आचरण किया जाता है, इसलिए ये महाव्रत हैं।

अहिंसा जैन आचार शास्त्र का केन्द्रीय तत्त्व है। जैन श्रमण अहिंसा का सर्वश्रेष्ठ साधक है। वह मन, वाणी और काय से हिंसा नही करता, न करवाता है और न हिंसा करने वाले का अनुमोदन ही करता है। किसी भी प्राणी, भूत, जीव और सत्त्व का हनन नहीं करना चाहिए, उन पर शासन नहीं करना चाहिए, उन्हें दास नहीं बनाना चाहिए, उन्हें परिताप नहीं देना चाहिए और उनका प्राण वियोजन नहीं करना चाहिए। यह अहिंसा धर्म शुद्ध, नित्य और शाश्वत है। तीर्थंकर भगवान् महावीर ने श्रमणाचार में प्रथम स्थान अहिंसा को दिया है। उनके अनुसार सभी जीवों के प्रति संयम रखना अहिंसा है। लोक में जितने भी त्रस या स्थावर प्राणी हैं, साधु या साध्वी, जानते या अजानते उनका स्वयं हनन न करें और न ही दूसरों से हनन करावें, तथा हनन करने वाले का अनुमोदन भी न करें। सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना नहीं। इसलिए निर्ग्रन्थ साधु या साध्वी प्राणिबध को घोर जानकर उसका परित्याग करें।

द्वितीय महाव्रत के रूप में सत्य की गणना की गयी है। जैसा हुआ है, वैसा ही कहना सत्य का सामान्य लक्षण है, परन्तु अध्यात्म मार्ग में स्व पर अहिंसा की प्रधानता होने से हित व मित वचन को सत्य कहा जाता है। सत्, सद्भाव, तत्त्व, तथ्य, सार्वभौमनियम, भूतोद्भावन संयम, काय, भाव और भाषा की ऋजुता तथा अविसंवादन योग, यथार्थवचन, अगर्हितवचन, व्यवहाराश्रित वचन ये सत्य के अर्थ हैं। प्रतिज्ञा के अनुसार व्रतों का पालन करना सत्य है। आत्मनिग्रह का उपाय है– सत्य। सत्य का अर्थ हैं– वस्तु का यथार्थ स्वरूप। काया की सरलता, भाषा की सरलता, भावों की सरलता और मन वचन कायरूप योग की अविसंवादिता–एकरूपता ही सत्य है। यही कारण है कि सत्य महाव्रती साधु, मन, वचन, काया तीनों योगों से सत्य का आचरण करने की प्रतिज्ञा करता है।

सामान्यतया स्तेय से तात्पर्य है चोरी ओर अस्तेय का तात्पर्य है चोरी न करना। बिना दी गयी वस्तु को स्वयं की इच्छा से उठाना, स्वामी की अनुमति के बिना किसी भी वस्तु को ग्रहण करना व उसका उपभोग एवं उपयोग करना अदत्तादान है। इसे ही चोरी कहते हैं। एकमहाव्रत के रूप में जब कोई साधक इस महाव्रत को स्वीकार करके उसका आचरण करता है तब वह बिना दिए किसी भी वस्तु को ग्रहण नहीं करता।

ब्रह्मचर्य का अर्थ है– आत्मविद्या या आत्मविद्याश्रित आचरण। ब्रह्मचर्य के तीन अर्थ है– वीर्य रक्षण, आत्म–रमण और विद्याध्ययन। केवल वीर्यरक्षा या जननेन्द्रिय विषयक संयम ब्रह्मचर्य का अधूरा अर्थ है। ब्रह्मचर्य का विधेयात्मक रूप तो अपनी आत्मा या परमात्मा की उपासना में लगना है। श्रमण को ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूप से पालन करना चाहिए।

अपरिग्रह महाव्रत को जानने के लिए परिग्रह को जानना आवश्यक है। परिग्रह का अर्थ है– ममत्व बुद्धि से किसी वस्तु का ग्रहण करना। रागद्वेष के वशीभूत होकर अष्टप्रकार के कर्मों को ग्रहण करना परिग्रह है। विश्व में जितने भी जीव हैं, वे सभी शरीर धारी हैं। शरीर ग्रहण करना भी परिग्रह है। परिग्रह दोष है। जो जितना परिग्रही रहता है, वह कर्म के भारं से उतना ही दबता जाता है। परिग्रह भारस्वरूप है। श्रमण पंचमहाव्रतों का आजीवन पालन करने का व्रत धारण करता है। उसका जीवन राग–द्वेष से मुक्त होकर पूर्ण त्याग का जीवन होता है। इसलिए वह पंचमहाव्रती कहलाता है।